RNI No.: RAJBIL/2013/54153

ISSN : 2322-0074

अलख दृष्टि

ALAKH DRISHTI

(भाषा, दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं मानविकी की संवाहिका त्रैमासिक शोध पत्रिका)

वर्ष-4 • अंक-03 • त्रैमासिक • जुलाई-सितम्बर 2016

A Peer Reviewed Research Quarterly

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ सं.
01.	भाषा का अवतरण : वैज्ञानिक दृष्टिकोण	डॉ. ओ३म् प्रकाश पाण्डेय	6-13
02.	संलेखना का महत्त्व और उसकी सफलता	डॉ. शुद्धात्मप्रकाश जैन	14-18
03.	गीता में परमात्मा (ईश्वर) का स्वरूप	प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'	19-24
04.	व्यंग्य-स्वरूप और विनियोग	प्रो. नन्दलाल कल्ला	25-32
05.	कन्या भ्रूणहत्या-परिणाम से समाधान तक	डॉ. बिजेन्द्र प्रधान	33-36
06.	विपाक सूत्र अध्ययन की सामाजिक एवं आध्यात्मिक उपयोगिता	डॉ. समणी शशिप्रज्ञा	37-40
07.	श्रीमद्भगवद्गीता में परिवार-प्रबंधन के सूत्र	प्रिया जैन	41-45
08.	**Gandhi and Spiritualism**	**Dr.Anil Dutta Mishra**	46-52
09.	**Multilingualism pedagogy and its Application for Inclusive Teacher Education Arena: a Thought** ***(With reference to National Policy on Education, 2016)***	**Dr. Bhabagrahi Pradhan**	53-57
09.	पुस्तक समीक्षा	प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'	58

गीता में परमात्मा (ईश्वर) का स्वरूप

प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'

परमसत्ता की विवेचना प्रायः सभी भारतीय दर्शनों में हुई है। गीता दर्शन में भी सर्व शक्तिमान सत्ता के रूप में परमसत्ता की विवेचना हुई है। इस परमसत्ता को पुरूषोत्तम या परमात्मा की संज्ञा से अभिहित किया गया है। इसे ब्रह्म, वासुदेव, प्रभु, साक्षी, महायोगेश्वर, विष्णु, परमपुरूष आदि नाम से भी यहां उल्लेख किया गया है। इसे संसार को उत्पन्न करने वाला, पोषण करने वाला तथा संहार करने वाला माना गया है। गीता में श्रीकृष्ण को ही पुरूषोत्तम अर्थात ईश्वर के रूप में चित्रित किया गया है। गीता में भगवान की सर्वोत्कृष्टता व्यक्त की गयी है।

1. भगवान के तीन रूप– गीता में भगवान के तीन रूपों की चर्चा है। वैसे भी भगवान को ब्रह्माण्ड में और ब्रह्माण्ड से परे भी माना गया है। उन्हें ब्रह्माण्ड से परे होने पर अतीन्द्रिय कहा जाता है और ब्रह्माण्ड में होने पर अन्तर्यामी कहा जाता है। उसके तीन रूप– क्षर, अक्षर और परमात्मा हैं। भगवान का परमात्मरूप अन्य दो रूपों से श्रेष्ठ है। यों कहना अधिक उपयुक्त होगा कि भगवान का क्षर, अक्षर रूप परमात्मा (पुरूषोत्तम) में ही समाहित है। शंकराचार्य भगवान (ब्रह्म) को निर्गुण कहते हैं तो रामानुजाचार्य भगवान को सगुण मानते हैं किन्तु गीता में दोनों के समन्वय के रूप में परमात्मा को माना गया है। स्वयं कृष्ण कहते हैं–

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एवं च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।[1]

अर्थात इस संसार में दो पुरूष हैं– एक नश्वर और दूसरा अनश्वर। नश्वर (क्षर) वस्तु एवं व्यक्ति है और अनश्वर (अक्षर) अर्थात कूटस्थ, नित्य सत्ता है। सदा सर्वदा परिवर्तनीय संसार में विद्यमान आत्मा क्षर है और जिसे अक्षर कहा गया है वह नित्य आत्मा है जो अपरिवर्तनशील और जो परिवर्तनशील वस्तुओं में भी अपरिवर्तनशील है।[2] जब आत्मा इस अपरिवर्तनशील की ओर अभिमुख हो जाती है तब सांसारिक गतिविधियाँ उससे छूट जाती हैं और वह आत्मा अपने अपरिवर्तनशील, नित्य अस्तित्व में पहुंच जाती है। ये दोनों ऐसे परस्पर विरोधी नहीं हैं कि दोनों में कोई मेल नहीं हो सकता है क्योंकि

ब्रह्म एक और अनेक है। वह नित्य, अजन्मा तथा विश्व के रूप में प्रवहमान है। मूलतः क्षर परमात्मा की सांसारिक अवस्था है। इस अवस्था में व्यक्ति अपने अहं से युक्त– मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ इत्यादि रूप से समझता है। सम्पूर्ण संसार का यही क्षर रूप है। यह सांसारिक चैतन्य निरोपाधि नहीं होता है। यहां विभिन्न नाम, रूप आदि उपाधियों का श्रृंगार होता है। नाम, रूप, सुख-दुःख आदि की उपाधि इस अवस्था में सर्वदा रहती है। इसके कारण जो अपने को संस्कारी समझता है। सम्पूर्ण संसार का यही क्षर रूप है। अक्षर अवस्था नाम रूपादि, सुख-दुःख से रहित अवस्था है। यह अवस्था जीव की शांत अवस्था है। यह विभिन्न उपाधियों से रहित अवस्था है। यह जीव की उपाधिरहित अवस्था है। इस अवस्था में जीव आत्मस्वरूप में स्थित रहता है। इससे स्पष्ट है कि पुरूष शांत एवं शुद्ध चैतन्य रूप है।

पुरूषोत्तम इन दोनों से भिन्न है। क्षर, अक्षर से परे आत्मा का सर्वोत्तम रूप है। अपनी प्रसन्नता का इजहार करने के लिए ही भगवान ने इस क्षर रूप को उत्पन्न किया है। अपने अक्षर गुणों के कारण वे उदासीन द्रष्टा एवं मुक्त बने रहते हैं। क्षर के रूप में भगवान विश्वलीला में हैं। अक्षर रूप में भगवान विश्वलीला के द्रष्टा है। पुरुषोत्तम के रूप में भगवान अपनी लीला को सार्थक कर रहे हैं। कहा भी गया है–

"यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तम!।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।"[3]

अर्थात मैं क्षर और अक्षर से ऊपर हूँ इसलिए इस संसार में और वेद में मैं ही पुरुषोत्तम माना जाता हूँ

यह परमात्मा विश्व में व्याप्त भी है और परे भी है। भगवान का यह पुरुषोत्तम रूप अन्य दो रूपों से भिन्न है। इस पुरुषोत्तम में द्रष्टा और दृश्य तथा ज्ञाता और ज्ञेय का लोप हो जाता है। इस नियन्ता को नियमित नहीं किया जा सकता। प्रकाश स्वरूप इसके प्रकाशन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। जो भगवान के इस पुरुषोत्तम रूप को जानता है, वही सच्चा भक्त है। तात्पर्य यह है कि जो ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित हो चुका है, वह इस संसार को असार या नश्वर समझता है। उसके लिए यह जगत मिथ्या है जो द्वैत से मुक्त है तथा जगत में एकमात्र सर्व व्यापक, स्वयंसिद्ध, सच्चिदानन्द को देखता है और स्वयं अपने आपको उसी का स्वरूप समझता है, वही परमात्मा की सच्ची भक्ति प्राप्त करता है। इस प्रकार भगवान के पुरुषोत्तम रूप को समझने वाला ही सच्चा भक्त है। वही अनन्यभाव से भगवान की भक्ति करता है–

"यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद् भजति मां सर्वभावेन भारत।।"

शंकराचार्य ने परिवर्तनशील (क्षर) की व्याख्या इस परिवर्तित होते हुए संसार के रूप में और अपरिवर्तनशील (अक्षर) की व्याख्या माया-शक्ति या ईश्वर की शक्ति के रूप में की है और ब्रह्म को नित्य, शुद्ध, बुद्ध और क्षर और अक्षर की परिमितियों से मुक्त बताया।

रामानुचार्य 'अक्षर' का अर्थ मुक्तात्मा से लेते हैं। इस संसार में दो सार तत्त्व हैं जिनमें एक आत्मा तथा दूसरा जड़ है। ये दोनों क्रमशः अक्षर एवं क्षर हैं। इन दोनों से ऊपर परमात्मा है, जो विश्व से परे है और साथ ही विश्व में व्याप्त भी है। ये दोनों परमात्मा की प्रकृति हैं। मुण्डको पनिषद में भी कहा गया है कि अक्षर से अतीत परम पुरुष परमात्मा है।[5]

परमात्मा की दो प्रकृति– परमात्मा की परा एवं अपरा ये दो प्रकृतियां गीता में स्वीकार की गयी है। अपरा प्रकृति भगवान की निकृष्ट प्रकृति है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ भगवान की अपरा प्रकृति है। आठ तत्त्वों से बनी हुई होने के कारण अपरा प्रकृति को 'अष्टधा' भी कहते हैं। यही सृष्टि का क्रम है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश यह पांच महाभूत हैं। इन पांच महाभूतों की पांच तन्मात्राएं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, एवं गन्ध हैं। प्रकृति इन आठ तत्त्वों से युक्त होकर अव्यक्त रूप से रहती है–

"भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेवच।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।"[6]

अर्थात हे अर्जुन! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार– ये आठ प्रकार की मेरी अपरा प्रकृति है। गीता की यह प्रकृति सांख्यकी प्रकृति की तरह स्वतन्त्र नहीं है।

दूसरी प्रकृति परा प्रकृति है। यह अपरा से श्रेष्ठ है। अतः यह भगवान की श्रेष्ठप्रकृति के रूप में जानी जाती है। यह जीव रूप है। कहा गया है–

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।[7]

हे अर्जुन! मेरी इस दूसरी जीव रूपी प्रकृति को परा जानो, जिसके द्वारा यह जगत धारण किया जाता है। गीता में अपरा प्रकृति को क्षेत्र तथा परा प्रकृति को क्षेत्रज्ञ कहा गया है। अपरा प्रकृति जड़ है तथा परा प्रकृति चेतन है। ये दोनों प्रकृति परमात्मा के शरीर एवं आत्मा हैं। परमात्मा इन दोनों से ऊपर है। ये दोनों प्रकृति परमात्मा की ही अभिव्यक्ति हैं। परन्तु परमात्मा इन दोनों से अधिक व्यापक है। संसार रूपी वृक्ष का उद्गम परमात्मा है।

यह संसार एक वृक्ष की तरह है। इसकी जड़े ऊपर है और इसकी शाखाएं नीचे की ओर हैं। कठोपनिषद में भी ऐसा ही कहा गया है कि यह विश्व वृक्ष शाश्वत है जिसकी जड़े ऊपर की ओर और शाखाएं नीचे की ओर हैं।[8] तैतरीय उपनिषद में भी कहा गया है कि भगवान संसार वृक्ष के मूल हैं।[9] गीता और कठोपनिषद के अश्वस्थवृक्ष में साम्य है। गीता कहती है–

"ऊर्ध्वंमूलमधः शाखमश्वस्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दासियस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।[10]

अर्थात लोग उस अनश्वर अश्वस्थ (पीपल का पेड़) के विषय में बताते हैं, जिसकी जड़े ऊपर की ओर और शाखाएं नीचे की ओर हैं। उसके पत्ते वेद हैं और जो इस बात को जान लेता है, वह वेदों का ज्ञाता है। महाभारत में भी विश्व की प्रक्रिया की तुलना एक वृक्ष से की गयी है, जिसे कि ज्ञान की मजबूत तलवार द्वारा काटा जा सकता है।[11] इस वृक्ष का उद्गम परमात्मा से होता है इसलिए यह कहा गया है कि इसकी जड़े ऊपर हैं क्योंकि यह संसार के रूप में फैलता है इसलिए इसकी शाखाएं नीचे की ओर नहीं जाती हैं। यह संसार एक जीवित शरीर है जो भगवान के साथ संयुक्त है।

गीता में ईश्वर को परमात्मा रूप, पुरूषोत्तम रूप माना गया है। जो समूचे विश्व का आधार है। भगवान कृष्ण कहते हैं कि– मुझसे परे और कुछ नहीं है। धागों में पिराये हुए मणियों के समान मुझ में सब कुछ गुंथा हुआ है। जल का रस मैं हूँ, चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा मैं हूँ। जल का पौरूष मैं हूँ। मैं पृथ्वी में गन्ध हूँ, अग्नि में तेज हूँ। मैं बुद्धिमानों की बुद्धि, तेजस्वियों का तेज और शक्तिशालियों की शक्ति हूँ। सब भूतों में धर्मानुकूल काम हूँ–

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशि सूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।।
पुण्योगन्धः पृथिव्यां च तेजश्चामि विभावसौ।
जीवनं सर्व भूतेषु तपश्चामि तपस्विषु।।
बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम।।
बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम।
धर्माविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।।[12]

श्रीकृष्ण आगे कहते हैं कि जितने भी भाव है, चाहे वे लयात्मक (सात्विक), आवेशपूर्ण (राजस) या आलस्यपूर्ण (तामस) हों, वे सब केवल मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं, इस बात को तुम समझ लो। मैं उनमें नही हूँ, वे मुझमें हैं–

"ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि नं त्वहं तेषु ते मयि"[13]

स्पष्ट है कि सत, रज एवं तम से बनी हुई कोई भी वस्तु परमात्मा से पृथक नहीं है और न ही स्वतन्त्र एवं आत्मनिर्भर ही है। ये सब परमात्मा से ही उत्पन्न होते हैं। वह इन सबको अपने अन्दर रखता है और इनमें व्याप्त है जबकि ये वस्तुएँ उसे अपने अन्दर नहीं रखती और उसमें व्याप्त नहीं है। परमात्मा और उसके प्राणियों में यही भेद किया गया है। वह किसी के अधीन नहीं है, सब उसके अधीन है।

अतः ईश्वर सर्वशक्तिमान सत्ता है। वह अनादि और अनन्त है। वस्तुएँ उत्पन्न होती है और नष्ट होती है। ईश्वर अविनाशी है क्योंकि वह अजन्मा है। वह उत्पत्ति एवं विनाश से रहित है। वह अद्वितीय है। किसी अन्य ईश्वर की सत्ता मानने पर उसकी सर्व शक्तिमत्ता को खतरा है। अतः वह एक है। वह पूर्ण है। वह आप्तकाम है। वह जगत का कर्त्ता, धर्ता एवं हर्ता है, किन्तु जगत में होते हुए भी वह जगत के परे भी है। ईश्वर के दो रूप है– विश्व रूप एवं विश्वातीत रूप। गीता में दोनों रूपों का

वर्णन मिलता है। गीता में कृष्ण कहते हैं- मैं ही इस संसार का माता-पिता हूँ, संभालने वाला और पितामह हूं। मैं ज्ञान का लक्ष्य हूं, पवित्र करने वाला हूँ। मैं ओंकार हूँ, ऋक्, यजु एवं सामवेद मैं ही हूँ। मैं ही यज्ञ, यज्ञ की अग्नि एवं आहुति हूँ। मैं सबका पोषक हूँ, प्रभु और साक्षी हूँ, निवास स्थान हूँ, शरण हूँ और मित्र हूँ। मैं ही उत्पत्ति और विनाश हूँ, मैं ही स्थिति हूँ, मैं ही विश्राम स्थान हूँ और अनश्वर बीज हूँ–

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्सामृयजुरेवच।।
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।।[14]

यह सब ईश्वर का विश्वरूप है। इसके अतिरिक्त ईश्वर का विश्वातीत रूप है। उसे न तो सूर्य, चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित करते हैं। वह परमधाम है, जहाँ से लौटना संभव नहीं है–

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम्।।[15]

कहा भी गया है कि जीव ईश्वर का सनातन अंश है। वह जीव होकर प्रकृति में रहने वाली मन सहित पांचों इन्द्रियों को अपनी ओर खींचता है। इससे स्पष्ट है कि ईश्वर चराचर जगत में व्याप्त है, परन्तु वह इससे परे भी है। ईश्वर अपने तेज से सम्पूर्ण संसार के पदार्थों को धारण करता है। वह रसात्मक सोम (चन्द्रमा) होकर सभी औषधियों एवं वनस्पतियों का पोषण करता है। ईश्वर वैश्वानर रूप अग्नि होकर सभी के देह में निवास करता है। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि का तेज ईश्वर का स्वरूप है। परमात्मा रूप में विश्व और विश्वातीत रूप का परम समन्वय है। ईश्वर संसार में है तथा संसार से परे भी है। संसार में है से गीता में सर्वेश्वरवाद स्पष्ट परिलक्षित होता है। संसार से परे है से गीता में विश्वातीतवाद दिखलाई पड़ता है। सचमुच ईश्वर जगत में है और जगत में समाप्त नहीं होता है, वह जगत से परे भी है। हे अर्जुन! सब वस्तुओं का जो भी कुछ बीज है, वह मैं हूँ। चराचर वस्तुओं में ऐसी कोई नहीं है, जो मेरे बिना रह सके। हे शत्रु को जीतने वाले अर्जुन, मेरी दिव्य विभूतियों का कोई अन्त नहीं है। जो कुछ मैंने तुम्हें बताया, वह मेरी असीम महिमा का केवल निदर्शन मात्र है–

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप।
एष तू देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया।[16]

जो कोई भी प्राणी गौरव, चारूता और भक्ति से युक्त है तो तू समझ ले कि वह मेरे ही तेज के अंग से उत्पन्न हुआ है। भगवान क्षर, अक्षर से जो विराट् रूप है। अर्जुन ने अपने दिव्य चक्षुओं से कृष्ण के उस विराट् रूप को देखा था। अर्जुन साक्षी हुआ उस विराट् स्वरूप का। वह साक्षी भाव से देखा था। अर्जुन उस रूप का द्रष्टा था। उसका कर्तृत्व समाप्त हो गया था। कर्तृत्व के समाप्त होने पर उसका अहं भाव भी समाप्त हो गया था। जब तक अहंकार होता है तब तक सत्य स्वरूप प्रकट नहीं होता है। विराट् स्वरूप के दर्शन करके वह अत्यन्त आह्लादित हुआ। इस विराट् रूप के दर्शन के बाद वह कहता है–

'नष्टो मोहः स्मृतिर्लध्वा त्वत्प्रसादानमयाच्युतः।"

अर्थात हे कृष्ण! मेरा अंह नष्ट हो चुका है। मुझे अपना कर्त्तव्य याद आ गया है। यह आपकी कृपा से ही संभव हुआ है।

ईश्वर का अवतार रूप

ईश्वर नित्य, शुद्ध-बुद्-मुक्त, पूर्ण ब्रह्म एवं परमात्मा होते हुए भी मत्स्य, कच्छप, बाराह, नृसिंह, वामन आदि अनेक रूपों में प्रकट होता है। यही ईश्वर का अवतार है। अवतार के कारण ही निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप में राम और कृष्ण के रूप में धरती पर अवतरित होता है। शास्त्रों में ईश्वर के दस अवतारों का उल्लेख है। ये सभी अवतार ईश्वर के सगुण रूप है। सगुण रूप में ही भगवान भक्तों को सबसे प्रिय है। साकार भगवान की पूजा, अर्चना कर भगवान से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास भक्त करते हैं। अवतार के कारण ही भक्तियोग का महत्व है। सबसे पहले अर्जुन से श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! मेरे और तुम्हारे अनेक जन्म पहले हो चुके हैं, मैं उन सबको जानता हूँ किन्तु तुम नहीं जानते हो। मेरे और तुम्हारे जन्म लेने में यह अन्तर है कि मानव-प्राणियों का देहधारण स्वैच्छिक नहीं है। वे जैसा चाहे वैसा जन्म नहीं ले सकते। अज्ञान के कारण अपनी प्रकृति से प्रेरित होकर वे बार-बार जन्म लेते हैं। भगवान प्रकृति पर नियन्त्रण करता है और अपनी इच्छानुसार शरीर धारण करता है। प्राणियों के सामान्य

जन्म का निर्धारण प्रकृति की शक्तियों द्वारा होता है। मूलतः जीव कर्म के नियम के अधीन है और इसलिए विवश होकर विश्व के जीवन में शरीर धारण करने के लिए विवश है। किन्तु ब्रह्म अपनी माया द्वारा (आत्ममायया) जन्म लेता है। मानवीय आत्माएं अपने कर्मों की प्रभु नहीं है। वे प्रकृति की वशवर्ती हैं, जबकि भगवान प्रकृति का नियन्त्रण करता है। भगवान अनासक्त कर्म करता है, अतः उसके कर्म उसे बन्धन में नहीं डालते हैं।

"न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु।।[17]

अवतार का अर्थ एवं उद्देश्य – अवतार का अर्थ उतरना अर्थात जो नीचे उतरता है उसे अवतार कहते हैं। दिव्य भगवान संसार को एक ऊँचे स्तर तक उठाने के लिए पार्थिव स्तर पर उतर आते हैं। अवतार का उद्देश्य एक नये संसार का, एक नये धर्म का उद्घाटन करना है।[18] अपने उपदेश और उदाहरण द्वारा वह यह प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार मनुष्य अपने आपको जीवन के उच्चतर स्तर तक उठा सकता है। परमात्मा धर्म के पक्ष में कार्य करता है। अतः जब भी धर्म क्षीण होने लगता है और अधर्म की वृद्धि होती है तब सर्वशक्तिमान भगवान जन्म लेते हैं। भगवान यद्यपि अजन्मा है और अमर है किन्तु जब कभी धरती पर धर्म का ह्रास होता है और अधर्म की वृद्धि होती है तब हे अर्जुन! मैं अवतार रूप में जन्म लेता हूँ।

"यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।[19]

मूलतः धर्म की धारणा ऋत के विचार का ही विकास है। जो ऋग्वेद में सांसारिक और नैतिक व्यवस्था का द्योतक है। ऋत, जो संसार को तार्किक दृष्टि से ऊँचा स्थान प्रदान करता है। गीता का परमात्मा धर्म का रक्षक है, कहा भी गया है-

"त्वमव्ययः शाश्वत धर्म गोप्ता "[20]

कृष्ण का अवतार या दिव्य भगवान का मानवीय संसार में अवतरण प्राणी की उस दशा को प्रकट करता है, जिस तक मानवीय आत्माओं को ऊपर उठना चाहिए। अवतार इस ब्रह्माण्ड की प्रक्रिया में अनेक कार्यों को पूरा करता है। इस धारणा से यह अर्थ निकलता है कि आध्यात्मिक जीवन और सांसारिक जीवन में परस्पर कोई विरोध नहीं है। यदि संसार अपूर्ण है और इसका शासन शैतान या मनुष्य रूप में शैतान द्वारा किया जा रहा है तो यह परमात्मा का दायित्व है कि अवतार लेकर शैतान या मानव रूपी शैतान से संसार और धर्म की रक्षा करें। भागवत में कहा गया है– सर्वव्यापी भगवान केवल दानवीय शक्तियों का विनाश करने के लिए ही नहीं, अपितु मर्त्य मनुष्यों को शिक्षा देने के लिए भी प्रकट होते है, अन्यथा आनन्दमय भगवान सीता के विषय में चिन्ता आदि का अनुभव किस प्रकार कर सकते है।[21] यह भूख और ब्याज, शोक और कष्ट, एकान्त और परित्यक्ता का अनुभव करता है। वह इन सब पर विजय प्राप्त करता है और हमसे कहता है कि हम भी उसके उदाहरण से साहस और धैर्य प्राप्त करें। बौद्ध दर्शन में भी अवतार का उल्लेख मिलता है। भगवान बुद्ध कहते हैं– शिष्यों! इस बात को समझ लो कि समय-समय पर ऐसा तथागत संसार में जन्म लेता है, जो पूरी तरह ज्ञान से प्रकाशित होता है। वह पवित्र और योग्य होता है। उसमें ज्ञान और अच्छाई प्रचुर मात्रा में भरी होती है। वह लोकों के ज्ञान के कारण प्रसन्न रहता है। पथ भ्रष्ट मर्त्यों के लिए वह अद्वितीय मार्गदर्शक होता है। वह देवताओं और मनुष्यों का गुरू होता है। वह भगवान बुद्ध है। वह सत्य शब्दों और सत्य की भावना की घोषणा करता है, जो आदि, मध्य और अन्त सबमें सुन्दर होता है। वह एक पवित्र और पूर्ण उच्चतर जीवन का ज्ञान लोगों को कराता है।[22] महायान बौद्ध-सम्प्रदाय के अनुसार गौतमबुद्ध से पहले भी बहुत से बुद्ध हो चुके है और गौतम के बाद एक और बुद्ध मैत्रेय के रूप में होगा। गीता कहती है कि सज्जनों की रक्षा के लिए और दुष्टों के विनाश के लिए और धर्म की स्थापना करने के लिए भगवान समय-समय पर जन्म धारण करते हैं।

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।"[23]

अतः यह स्पष्ट है कि अवतार का उद्देश्य केवल विश्व व्यवस्था को बनाये रखना ही नहीं है, अपितु मानव प्राणियों को उनकी अपनी प्रकृति में पूर्ण बनने में उनकी सहायता करना भी है। मुक्त आत्मा पृथ्वी पर असीम की एक जीती-जागती प्रतिमा बन जाती है। परमात्मा के

मानव रूप में अवतरण का एक प्रयोजन यह भी है कि मनुष्य ऊपर उठकर परमात्मा तक पहुंच सके। धर्म का उद्देश्य मनुष्य की यह पूर्णता है और अवतार सामान्यतया इस बात की घोषणा करता है कि वह स्वयं ही सत्य, मार्ग और जीवन है। राम और कृष्ण के रूप में भगवान विष्णु के अवतार से क्रमशः जहां अधर्मी रावण एवं कंस का विनाश होता है वहीं बहुत सारे लोगों को धर्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है। दुष्टों के संहार से तथा साधुओं की रक्षा से धर्म की रक्षा है, यही अवतारवाद का रहस्य है।

अस्तु भगवद्गीता में जिस परमात्मा का विवेचन मिलता है वह एक, अद्वितीय, स्वतन्त्र, सर्वशक्तिमान, अतीन्द्रिय एवं अन्तर्यामी रूप में दृष्टिगोचर होता है। वह जगत में भी और जगत से परे भी है। वह क्षर रूप में संसार है और अक्षर रूप में विश्वात्मा है तथा परमात्मा रूप में इन सबसे परे है। उसी की ज्योति से सब ज्योतिर्मय होते हैं। उसका विराट् स्वरूप है जिसका दर्शन उसके परमभक्त अर्जुन को हुआ था जिसके कारण वह निष्काम कर्म मार्ग पर अग्रसर हुआ था। वह अधर्मियों के विनाश एवं धर्म के उत्थान के लिए अवतार लेता है और संसार में धर्म की प्रतिष्ठा करता है, यही गीता में परमात्मा की वास्तविकता है।

संदर्भ सूची -

1. श्रीमद्भगवद् गीता, 15/16
2. अमरकोशः एक रूपतया तु यः कालव्यापी स कूटस्थः।
3. गीता, 15/18
4. वही, 15/19
5. मुण्डकोपनिषद- 'अक्षरात परतः परः पुरुषः
6. गीता, 7/4
7. वही, 7/5
8. कठोपनिषद, 6/1
9. तैत्तरीयउपनिषद, 1/10
10. गीता, 15/1
11. महाभारत, अश्वमेघपर्व, 47/12-15
12. गीता, 7/8-11
13. वही, 7/12
14. वही, 9/17-18
15. वही, 15/6
16. वही, 10/40
17. वही, 9/9
18. भागवत, 9/24
19. गीता, 4/7
20. वही, 11/18
21. भागवत, 5/19
22. तेविज्जसुत, 6/6
23. गीता, 4/8

निदेशक
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
जैन विश्व भारती संस्थान
लाडनूं - 341306 (राज.)

♦ ♦ ♦